विपश्यना क्यों और कैसे ?

भारत की प्राचीनतम ध्यान साधना विधि

लेखक: विपश्यना आचार्य श्री सत्य नारायण गोयन्का

भारत की प्राचीनतम ध्यान साधना विधि

- मानसिक विकारों (राग, द्वेष मोह, भय, अंहकार आदि) से मुक्ति
- मन की वास्तविक शांति
- पल-प्रतिपल सत्य-दर्शन
- मानसिक तनावों से मुक्ति
- चरित्र निर्माण
- मन पर नियंत्रण
- आत्म-मंगल (स्व-मंगल)
- अंध भक्ति से छुटकारा
- सर्व मंगल

विशेषताएं

पूर्णतया वैज्ञानिक, सहज, सरल साम्प्रदायिकता-विहीन,
अपनी ही अनुभूतियों से अपने दुर्गुणों को मिटाने वाली,
सुखी जीवन जीने की अद्वितीय कला।

प्रशिक्षण परिपाटी : दस दिवसीय आवसीय शिविर

दिल्ली के निकट केन्द्रों की बुकिंग व जानकारी के लिए :-

www.dhamma.org
www.vridhamma.org
www.sota.dhamma.org

विपश्यना साधना संस्थान

हेमकुंठ टावर 10वा तल, रुम न 1015
98, नेहरु प्लेस दिल्ली-110019
फोन :011-26452772, 26485071-72
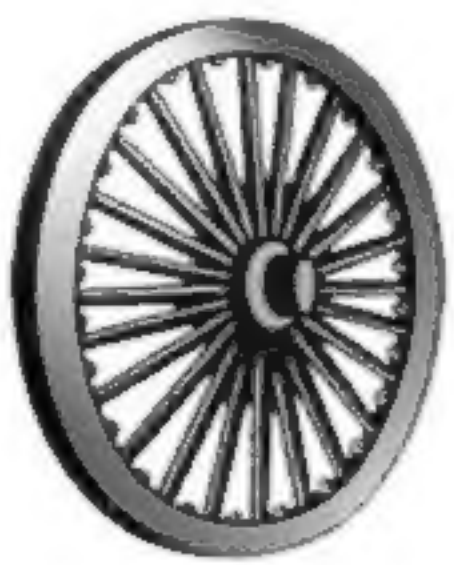
विपश्यना क्यों ?

धर्म न हिंदू बौद्ध है, धर्म न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शान्ति सुख चैन॥

शान्ति व चैन किसे नहीं चाहिए ? जबकि सारे संसार में अशांति और बैचेनी छायी हुई नजर आती है। शांतिपूर्वक जीना आ जाय तो जीने की कला हाथ आ जाय।

सच्चा धर्म सचमुच जीने की कला ही है, जिससे कि हम स्वयं भी सुख और शांतिपूर्वक जीएं तथा औरों को भी सुख-शांति से जीने दें। शुद्ध धर्म यही सिखाता है, इसलिए सार्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वभौमिक होता है। संप्रदाय को धर्म मानना प्रवंचना है।

समझें, धर्म कैसे शांति देता है !

पहले यह जान लें कि हम अशांत और बैचेन क्यों हो जाते हैं ? गहराई से सोचने पर साफ मालूम होगा कि जब हमारा मन विकारों से विकृत हो उठता है तब वह अशांत हो जाता है। चाहे क्रोध हो, लोभ हो, भय हो, ईर्ष्या हो या और कुछ। उस समय विक्षुब्ध होकर हम संतुलन खो बैठते हैं। क्या इलाज है जिससे हममें क्रोध, ईर्ष्या, भय इत्यादि आयें ही नहीं और आयें भी तो इनसे हम अशांत न हो उठे ?

आखिर ये विकार क्यों आते हैं ? अधिकांशतः किसी अप्रिय घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप आते हैं। तो क्या यह संभव है कि दुनिया में रहते हुए कोई अप्रिय घटना घटे ही नहीं ? कोई प्रतिकूल परिस्थिति पैदा ही न हो ? नहीं, यह किसी के लिए संभव नहीं।

जीवन में प्रिय-अप्रिय दोनों प्रकार की परिस्थितियां आती रहती हैं। प्रयास यही करना है कि विषम परिस्थिति पैदा होने के बावजूद भी हम अपने मन को शांत व संतुलित रख सकें। रास्ते में कांटे-कंकर रहेंगे ही। उपाय यही हो सकता है कि हम जूते पहन कर चलें। तेज वर्षा, धूप आयेगी ही। बचाव इसी में है कि हम छाता तानकर चलें। याने प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी हम अपनी सुरक्षा स्वयं करना सीखें। सुरक्षा इसी में है कि कोई गाली दे, अपमान करे तो भी मैं क्षुब्ध न होकर निर्विकार बना रहूं। यहां एक बात यह विचारणीय है कि किसी व्यक्ति द्वारा अयोग्य व्यवहार करने पर यानि उसके दोष के कारण क्षोभ या विकार मुझे क्यों होता है ?

इसका कारण मुझमें याने मेरे अचेतन मन में संचित अहंकार, आसक्ति, राग, द्वेष, मोह आदि की गांठें हैं जिन पर उक्त घटना के आघात लगने पर क्रोध, द्वेष आदि विकार चेतन मन पर उभरते हैं। इसलिए जिस व्यक्ति का अंतर्मन परम शुद्ध है, उसे ऐसी घटनाओं से कोई विकार या अशांति नहीं हो पाती।

परतुं प्रश्न यह है कि जब तक अंतर्मन परम शुद्ध नहीं हो जाता तब तक क्या किया जाये ? मन में पूर्व संचित संस्कारों की गंदगियां तो हैं ही और इन्हीं के कारण किसी भी अप्रिय घटना का संपर्क होते ही नए विकारों का उभार आता ही है। ऐसी अवस्था में क्या करें ?

एक उपाय तो यह है कि जब मन में कोई विकार जागे तो उसे दूसरी ओर लगा दें । किसी अन्य चिंतन में अथवा अन्य काम में । यानि वस्तुस्थिति से पलायन करें । परंतु यह सही उपाय नहीं है। जिसे हमने दूसरी ओर लगाया वह तो ऊपर-ऊपर का चेतन मन है । अंदर का अचेतन, अर्धचेतन मन तो उसी प्रकार क्षुब्ध होकर भीतर ही भीतर मुंज की रस्सी की तरह अकड़ता और गांठे बांधता जाता है । भविष्य में जब कभी ये गांठे उभरकर चेतन मन पर आयेंगी तब और अधिक अशांति पैदा करेंगी। अतः पलायन करना समस्या का सही समाधान नहीं है। रोग का सही इलाज नहीं है।

इसी समस्या के समाधान की खोज आज से २५०० वर्ष पूर्व इसी देश में भगवान गौतम बुद्ध ने की और लोगों के कल्याण के लिए सर्व सुलभ बनाया। उन्होंने अपनी अनुभूतियों के बल पर जाना कि ऐसे अवसर पर पलायन न करके वस्तुस्थिति का सामना करना चाहिए । किसी भी घटना के कारण जो भी विकार जागे उसे यथावत देखना चाहिए । क्रोध आया तो क्रोध जैसा है उसे वैसा ही देखें, देखते रहें । इससे क्रोध शांत होने लगेगा। इसी प्रकार जो विकार जागे, उसे यथाभूत देखने लगें तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाएगी। परंतु कठिनाई यह है कि जिस समय विकार जागता है उस समय हमें होश नहीं रहता। क्रोध आने पर यह नहीं जानते कि क्रोध आया है। क्रोध निकल जाने के बाद होश आता है। तब सोचते हैं कि बड़ी भूल हुई जो क्रोध में आकर किसी को गाली दी या मारपीट पर उतारू हो गये इस बात को लेकर पश्चाताप करते हैं । परंतु दूसरी बार वैसी परिस्थिति आने पर फिर वैसा ही करते हैं । वस्तुतः क्रोध आने पर तो हमें होश रह नहीं पाता, बाद में होश आने पर पश्चाताप करने से लाभ नहीं होता। चोर आए तब सोए रहें, परंतु उसके द्वारा घर का माल चुरा लें जाने के बाद जल्दी-जल्दी ताले लगायें तो इससे क्या लाभ ? विकार जागने पर होश कौन दिलाए ? क्या हर आदमी अपने साथ सचेतक के रूप में कोई सहायक रखे ? यह संभव नहीं है।

और मान लीजिए कि संभव हुआ भी, किसी ने अपने लिए कोई सहायक नियुक्त कर भी लिया और ऐन मौके पर सहायक ने सचेत भी कर दिया कि आपको क्रोध आ रहा है, आप क्रोध को देखिए। तो दूसरी कठिनाई यह है कि अमूर्त क्रोध को कोई कैसे देखे ? जब क्रोध को देखने का प्रयास करते हैं तब जिसके कारण क्रोध आया है वही आलंबन बार-बार मन में उभरता है और आग में घी का काम करता है । वही तो उदीपन है। उसके चितंन से छुटकारा कैसे होगा ? बल्कि उसे बढ़ावा मिलेगा । तो एक बड़ी समस्या यह है कि आलंबन से छुटकारा पाकर अमूर्त विकार को साक्षीभाव से कैसे देखा जाय ?

अतः हमारे सामने दो समस्याएं हैं। एक तो यह कि विकार के जगने पर सचेत कैसे हों ? और दूसरी यह कि सचेत हो जायें तो अमूर्त विकार का साक्षीभाव से निरीक्षण कैसे कर सकें ? उस महापुरूष ने प्रकृति की सच्चाइयों की गहराई तक खोज करके यह देखा कि किसी भी कारण से मन में कोई विकार जागता है तब एक तो सांस की गति में अस्वाभाविकता आ जाती है और दूसरे शरीर के अंग-प्रत्यंग में सूक्ष्म स्तर पर किसी न किसी प्रकार की जीव-रसायनिक प्रक्रिया होने लगती है। यदि इन दोनों को देखने का अभ्यास किया जाए तो परोक्ष रूप से मन के विकार को देखने का काम होने लगता है और विकार स्वतः क्षीण होते-होते निर्मूल होने लगता है। सांस को देखने का अभ्यास 'आनापान-संति' कहलाता है और शरीर में होने वाली जीव-रसायनिक प्रतिक्रियाओं को साक्षीभाव से देखने का अभ्यास 'विपश्यना' कहलाता है। दोनों एक दूसरे से गहरे संबन्धित हैं। इन दोनों का बहुत अच्छा अभ्यास हो जाये तो किसी भी कारण जब मन में विकार उठे तो पहला काम यह होगा कि सांस की बदली हुई गति और शरीर में उत्पन्न हुई किसी भी प्रकार की जीव-रसायनिक प्रतिक्रिया हमें सचेत करेगी कि चित्तधारा में कोई विकार जाग रहा है। सांस और सूक्ष्म संवेदना को देखने लगें तो स्वभावतः उस समय के उठे विकार का उन्मूलन होने लगेगा। जिस समय हम अपने सांस लेने और छोड़ने को साक्षी भाव से देखते हैं अथवा शरीर की जीव-रसायनिक या विद्युत-चुम्बकीय प्रतिक्रिया को साक्षी भाव से देखते हैं, उस विकार. उत्पन्न करने वाले आलंबन से सहज ही संपर्क टूट जाता है। ऐसा होना वस्तुस्थिति से पलायन नहीं है। क्योंकि अंतर्मन तक उस विकार ने जो हलचल पैदा कर दी, उस सच्चाई को देख रहे हैं। सतत अभ्यास द्वारा अपने आपको देखने की कला जितनी पुष्ट होती है उतनी ही स्वभाव का अंग बनती है और धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आती है कि विकार जागते ही नहीं अथवा जागते हैं तो बहुत दीर्घ समय तक चल नहीं पाते या चलते भी हैं तो पत्थर की लकीर की तरह गहरे अंकित नहीं हो पाते बल्कि पानी या बालू पर पड़ी लकीर जैसा हल्का संस्कार बनता है जिससे शीघ्र छुटकारा मिल जाता है। संस्कार जितना गहरा होता है उतना ही अधिक दुःखदायी और बंधनकारक होता है। जितनी शक्ति से और जितनी देर तक किसी भी कार्य की प्रक्रिया चलती है, अन्तर्मन पर उतनी ही गहरी लकीर पड़ती है। अतः काम की बात यह है कि विकार जागते ही उसको साक्षीभाव से देखकर उसकी शक्ति क्षीण कर दी जाये ताकि वह अधिक लंबे अर्से तक चलकर गहराई में न उतर सकें। आग लगते ही उस पर पानी छिड़कें, कहीं ऐसा न हो कि पेट्रोल छिड़क कर उस आग को बढ़ावा दे दें। जगे हुए विकार को सचेत होकर तत्क्षण देखने लग जाना, उस विकार की आग पर पानी छिड़कना है और जिस आलंबन को लेकर विकार जागा, बार-बार उसका चिंतन करना,

उस पर पेट्रोल छिड़कना है। अपने अपमान की अप्रिय घटना को याद करते रहें तो द्वेष की लकीर को याद करके अधिक गहरी बना लेते हैं। उससे बाहर निकलना दूभर हो जाता है ।

प्रकृति के कानून को ऋत कहते हैं, हम उसे ही धर्म कहते हैं । यह प्रकृति का नियम है कि जब हमारे मन में कोई विकार जागता है, तब हम अशांत हो जाते हैं और विकार से छुटकारा पाते हीं अशांति से छुटकारा पा लेते हैं । सुख-शांति भोगने लगते हैं । प्रकृति के इस नियम को जानकर विकारों से छुटकारा पाने का तरीका कोई महापुरूष धर्म के रूप में दुखियारे लोगों को देता है । परंतु अपने पागलपन से उन तरीकों को अपनाने के बजाय याने धर्म को धारण करने के बजाय हम उसे वाद-विवाद का विषय बनाकर सिद्धांतों की लड़ाई में पड़ जाते हैं और कोरे दार्शनिक बुद्धिविलास से पारस्परिक विद्रोह बढ़ाकर अपनी हानि करते हैं ।

विपश्यना दार्शनिक सिद्धान्तों का संघर्ष नही हैं । हर व्यक्ति ज्ञान-चक्षु द्वारा अपने आपको को देखे, 'स्व' का निरीक्षण करे । अपने भीतर जब विकारों की आग लगे तब उसे स्वयं देखकर बुझाए । यही सम्यक दर्शन है । यही 'स्व' का निरीक्षण है । ज्ञान-चक्षु से निरीक्षण है । अनुभूतियों के स्तर पर सत्य-निरीक्षण है । जागरूक रहकर यथावत सत्य को देखने का अभ्यास विपश्यना है । इसको बुद्धिविलास का विषय बनाने से कोई लाभ नहीं । पढ़ने-सुनने या चर्चा-परिचर्चा से बौद्धिक स्तर पर विषय को समझा जा सकता है । उससे कुछ प्रेरणा भी मिल सकती है । परंतु वास्तविक लाभ तो अभ्यास करने में है । अपने मन को विकारों से विकृत होने ही न दें, सदा सचेत रहकर 'स्व' का निरीक्षण करते रहें । यह काम बिना अभ्यास के सम्भव नहीं है । जन्म-जन्मान्तरों से मन पर संस्कारों, विकारों की जो परतें पड़ी हैं और नए-नए विकार बनाते रहने का जो स्वभाव बन गया है, उससे छुटकारा पाने के लिए साधना का अभ्यास नितांत आवश्यक है । उसे केवल सैद्धान्तिक स्तर पर जान लेना पर्याप्त नहीं है और न केवल दस दिनों का शिविर ही काफी है । सतत अभ्यास की आवश्यकता है ।

मात्र दस दिन के अभ्यास से कोई व्यक्ति पारंगत नहीं हो सकता । दस दिन में तो भविष्य में अभ्यास करने की एक विधि हाथ लगती है । अभ्यास पूरे जीवन तक का है । जितना अभ्यास बढ़ता है, उतना धर्म जीवन में उतरता है । जीवन जीने की कला पुष्ट होती है । आत्म-सजगता बढती है तो आचरण सुधरते हैं, चित्त निर्मल निर्विकार होता है । निर्मल निर्विकार चित्त, मैत्री, करूणा, मुदिता और समता के सद्गुणों से स्वभावतः भरता है । साधक स्वयं तो कृतकृत्य होता ही है, समाज के लिए भी सुख-शांति का कारण बनता है ।

सौभाग्य से यह आत्म-निरीक्षण याने स्व-निरीक्षण का अभ्यास, विपश्यना की साधना-विधि ब्रह्मदेश में लगभग दो हजार वर्ष से आज तक अपने शुद्ध रूप में जीवित है । मुझे सौभाग्य से इस विधि को सीखने का कल्याणकारी अवसर प्राप्त हुआ ।

शारीरिक रोग के साथ-साथ मानसिक विकारों एवं आसक्ति-भरे तनावों से छुटकारा पाने का रास्ता मिला। सचमुच एक नया जीवन ही मिला। धर्म का मर्म जीवन का उतार सकने की एक मंगल-विधा प्राप्त हुई । अब कुछ वर्षों से भारत में आया हूँ। यह विधि तो इसी देश की पुरातन निधि है । पवित्र संपदा है । किसी भी कारण से यहां से विलुप्त हो गयी । मैं तो भागीरथ की तरह खोई धर्म-गंगा को ब्रह्मदेश से इस देश में पुनः ले आया हूँ और इसे अपना बड़ा सौभाग्य मानता हूँ ।

याद करता हूँ कि विकारों से विकृत होकर मैं कितना दुःखी रहा करता था और इन विकारों से छुटकारा पाकर कितना दुःख-मुक्त हुआ, सुखलाभी हुआ। इसलिए जी चाहता है कि अधिक से अधिक लोग जो अपने विकारों से विकृत हैं, इसलिए दुःखी हैं, वे इस कल्याणकारिणी विधि द्वारा विकारों से छुटकारा पाना सीखें ओर दुःख-मुक्त होकर सुखलाभी हों । याद करता हूँ कि जब मैं विकारों से विकृत होकर दुःखी होता था तो अपना दुःख अपने तक सीमित न रखकर औरों को बांटता था । औरों को दुःखी बनाता था, उस समय मेरे पास बांटने के लिए दुःख ही था । अब जी चाहता है कि इस कल्याणकारी विधि द्वारा जितना-जितना विकारों से विमुक्त हुआ और फलतः जो भी यत्किंचित सुख-शांति मिली, उसे लोगों में बांटू। इसे बांटने पर सुख-संवर्धन होता है । दस दिन के शिविरों में लोग अक्सर मुरझाए चेहरे लेकर आते हैं और शिविर समाप्ति पर खिले चेहरों से घर लौटते हैं तो सचमुच मन संतोष से भर उठता है ।

अधिक से अधिक लोग इस मंगलकारी विधि का लाभ उठाकर सुखलाभी हों ! अधिक से अधिक लोगों का भला हो ! कल्याण हो ! मंगल हो ! यही धर्मकामना है !

भवतु सब्ब मंगलं !

सत्यनारायण गोयनका "

कारण तेरे दुःख के भीतर ही हैं जान ।

क्या तूं ढूंढ़े बावरा, बहिर्मुखी नादान ।।

जब तक मन में राग है, तब तक मन में द्वेष ।

तब तक दुःख ही दुःख है, मिटे न मन के क्लेश ।।

सुख दुःख दोनों एक से, मान और अपमान ।।

जिस दिन यह समता मिले, उस दिन ही निर्वाण ।।

शुद्ध-धर्म का शांति-पथ, संप्रदाय से दूर ।

शुद्ध-धर्म की साधना, मंगल से भरपूर ।।

****

विपश्यना कैसे ?

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्जो,
चित्तं पञ्ञ्च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु,
सो इमं विजटये जटन्ति ॥

- विसुद्धिमग्ग १.१

जो पुरूष प्रज्ञावान है, वीर्यवान है, पंडित है, भिक्षु है, वह शील पर प्रतिष्ठित हो, चित्त (समाधि) और प्रज्ञा की भावना करते हुए (क्लेश रूपी) जटा को काट सकता है।

१. आधार शील-सदाचार का।

चित्त को शुद्ध करने वाली इस विधि को सीखने के लिए हमें किसी विपश्यना की तपोभूमि में प्रवेश पाना आवश्यक होता है। यह विद्या अनुकूल वातावरण में ही सीखी जा सकती है। लिखना-पढ़ना सीखना हो तो किसी पाठशाला में भर्ती होना ही होता है। शरीर को स्वस्थ सबल रखने के लिए किसी व्यायाम शाला में जाना होता है, किसी योगाश्रम में जाकर के प्राणायाम, आसन इत्यादि सीखने होते हैं। ठीक वैसे ही चित्त को निर्मल करने वाली यह विपश्यना विद्या सीखने के लिए किसी विपश्यना की तपोभूमि में जाना होता है। किसी पाठ्शाला में रात-दिन रहने की आवश्यकता नहीं। किसी व्यायामशाला में, किसी योग्याश्रम में रात-दिन रहने की आवश्यकता नहीं। विद्या सीख ली, घर में आकर उसका अभ्यास करते रहें तो काम चल जाता है। परंतु विपश्यना एक ऐसी विद्या है जिसे सीखने के लिए कम से कम एक बार आरंभ में दस दिनों के लिए तपोभूमि में ही रहना होता है।

मन को केवल एकाग्र करने की साधना करनी हो तो किसी मंत्र का आलंबन मिल गया, किसी मूरत का आलंबन मिल गया या किसी अन्य प्रकार का आलंबन मिल गया और गुरू के पास सीखकर के घर में उसका अभ्यास करते रहें। ऐसा होता है, हो सकता है। लेकिन विपश्यना केवल चित्त के ऊपरी-ऊपरी हिस्से को विकार-विमुक्त करने की साधना नहीं है। इसमें मन का बहुत गहरा सर्जिकल ऑपरेशन होता है। अंतर्मन की गहराइयों तक हमने जो विकार अनेक जन्मों से इकट्टे कर रखे हैं, कोई अनेक जन्म को न माने तो इस जन्म में भी कम विकार एकत्र नहीं किये। और फिर अंतर्मन की गहराइयों में हमारा मानस एक स्वभाव -शिकंजे का बंदी हो गया, एक स्वभाव-शिकंजे में गिरफ्त हो गया। उस गिरफ्तारी से उसे मुक्त करना है, उसका स्वभाव पलटना है। तो उन गहराइयों तक जाने के लिए मन का ऑपरेशन होना बहुत आवश्यक है।

हम शरीर से रोगी हो जायें तो किसी ऐसी अस्पताल में जाना होता है जो बहुत स्वच्छ हो, स्वास्थ्यप्रद हो। अगर शरीर के किसी अंग का ऑपरेशन करवाना है तो ऐसे ऑपरेशन

थियेटर में जाना होता है जो बिल्कुल निरापद हो, स्वच्छ हो । यह तो मन का ऑपरेशन है । तो ऐसे वातावरण में ही इसे सीख सकते हैं जहां किसी प्रकार का प्रदूषण न हो। प्रदूषण एक तो भौतिक होता है, उससे भी बचना है । एक और बडी प्रदूषण मन के इन विकारों का प्रदूषण है ।

ये विपश्यना की तपोभूमियां प्रचीन काल में भी थीं और अब भी हैं । इनके वातावरण को बहुत शुद्ध रखा जाता है । वहां खूब हरियाली हो, किसी तरह का भौतिक प्रदूषण न हो। शांन्ति हो, नीरवता हो, ध्यान के अनुकूल वातावरण हो । फिर इस तपोवन में सिवाय विपश्यना के अन्य किसी प्रकार की प्रवृत्ति न हो। केवल विपश्यना का काम करते-करते शुद्ध धर्म की तरंगों से सारी तपोभूमि तरंगित हो उठती है । बड़ा अनुकूल स्थान होता है जहां पहले पहल ऑपरेशन करने के लिए जाना पड़ता है । दूसरी बात वहां ऐसा कोई अनुभवी, अधिकारी व्यक्ति मिलता है जो इस ऑपरेशन में, यह विद्या सिखाने में सहायक होता है । अपने आप इसे करने लगें, यह उचित नहीं मानते ।

साधना की विधि तो बड़ी सरल है। इसमें किसी प्रकार की कोई उलझन, परेशानी नहीं है। कोई सुन कर भी आरंभ कर सकता है । पर चेतावनी देना चाहते हैं कि यों सुनकर या पढ़कर और किसी प्रकार की साधना भले कर लें पर विपश्यना साधना न करें । बड़ा गम्भीर काम है, बड़ा नाज़ूक काम है, कम से कम एक बार दस दिनों के लिए किसी अनुकूल वातावरण में रहते हुए किसी जानकार अनुभवी, अधिकारी व्यक्ति के मार्ग दर्शन में यह विद्या सीखनी चाहिए। इसके बाद हर व्यक्ति अपना मालिक है । घर में इतनी निरंतरता से अभ्यास हो पाना संभव नहीं होता। अतः घर में इतना गहरा ऑपरेशन होने वाला नहीं है । एक बार सीखने के बाद घर में सुबह-शाम ध्यान कर सकते हैं । जब कभी जरूरत हो कि अब और गहरा ऑपरेशन करना है, तब फिर तपोभूमि चले जायें लेकिन पहली बार काम शुरू करने के लिए किसी तपोभूमि में जाकर के ही यह विद्या सीखनी चाहिए । तभी बहुत निरापद अभ्यास होगा ।

तपोभूमि में जाकर ही सीखने का एक और भी कारण है । सारी विद्या शुद्ध चित्त के आचरण में प्रतिष्ठित हो जाने की विद्या है । अतः काम इस प्रकार आरंभ करेंगे ।

की दस दिनों तक जब यह विद्या सीख रहे हैं तब अपने शीलों को खूब पुष्ट रखेंगे । किसी तरह से शील टूटने न पाये।

- ➢ वहां रहते हुए किसी की हत्या नहीं करेंगे ।
- ➢ चोरी नहीं करेंगे ।
- ➢ व्याभिचार नहीं करेंगे, बल्कि दस दिनों तक ब्रह्मचर्य का ही पालन करेंगे ।
- ➢ झूट नहीं बोलेंगे ।
- ➢ किसी भी प्रकार के मादक पदार्थ का सेवन नहीं करेंगे ।

एक ओर तो हमने यह समझा कि शील-सदाचार को जीवन में उतारने के लिए अपने मन को वश में करना होता है । मन हीं वश में नहीं होगा तो हम शीलवान कैसे बनेगें ? हम सदाचारी कैसे बनेगें ? दूसरी ओर इस विद्या के लिए आवश्यक है कि मन को वश में करने का जो काम शुरू करो, उसका आधार शील-सदाचार का होना चाहिए । माने शील-सदाचार का जीवन जीते हुए ही यह विद्या सीख सकोगे । तो बड़ी कठिनाई पैदा हुई। शील-सदाचार का जीवन जीने के लिए मन को वश में करना होगा । मन को निर्मल करना होगा । मन को वश में करने के लिए, मन को निर्मल करने के लिए शील-सदाचार का पालन करना होगा । तो कठिनाई हो गयी ? आगे घोडा रखें कि आगे गाड़ी रखें ? पहले शील-सदाचार का पालन हो कि पहले चित्त की एकाग्रता और निर्मलता का काम हो ? कौन-सा काम पहले हो ?

इस समस्या के समाधान के लिए ही हमारे देश के सद्गुरूओं ने यह परंपरा स्थापित की कि किसी तपोभूमि में जाकर यह विद्या सीखो। वहां जाते ही ये पांचों शील याने शरीर से , वाणी से कोई ऐसा काम नहीं करेगें जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती हो। अन्य प्राणियों का अहित होता हो, उनका अमंगल होता हो । ऐसा कोई काम कर ही नहीं सकेगें क्योंकि तपोभूमि का वातावरण ही ऐसा है । कहां किसकी हत्या करने जाएंगे ? कहां चोरी करने जाएंगे ? कहां व्यभिचार करने जाएंगें ? कहां नशा-पत्ता करेगें ? झूठ न बोल जाय, इसके लिए भी तपोभूमि का अपना एक और नियम होता है कि जब तक ऑपरेशन चल रहा है तब तक मौन रहेंगे । आपस में बात नहीं करेंगे । अपने आचार्य से, मार्ग दर्शक से भले ही बात करें । सो भी इस विद्या के बारे में बात करें । कोई बात नहीं समझ में आयी हो कि कैसे काम करना है, तो बात करें । लेकिन उनसे बात करते हुए भी सजग रहेंगें, जैसे प्रश्न पूछा गया कि "तुम्हें कैसे अनुभव हो रहा है ? क्या कर रहे हो ?" तो उसका उत्तर देते हुए बहुत सजग रहेंगे । झूठ नहीं बोलेंगे। किसी बात को बढा चढाकर नहीं बोल देंगे । किसी बात को छिपा कर नहीं बोलेंगे । इस तरह से यह 'झूठ न बोलने का' शील भी उस वातावरण में आसानी से पालन किया जा सकेगा । वहां इतना व्यस्त रहता है साधक ; इतनी व्यस्त रहती है साधिका कि सुबह चार, साढ़े चार बजे से रात के नौ, साढ़े नौ बजे तक ; यही काम करना है । तो कहां शील-सदाचार भंग होगा ?

तो शील का यह आधार बना। अब इसके बाद वहां काम करना शुरू करें । जैस-जैसे बताया जाय, वैसे-वैसे काम करता चला जाये तो देखेगा कि काम बहुत ठीक ढंग से हो रहा है। लेकिन शील का आधार नहीं हो तो काम आगे नहीं बढ़ता। भगवान बुद्ध के समय भी भगवान महावीर को छोड़ करके, कई ऐसे आचार्य थे, और आज भी, ऐसे आचार्य हैं जो अपने साधकों से कहते हैं कि अरे, क्या पड़ा है। शील-सदाचार में ? तुम्हारे मन में जो आये सो करो ना ? खूब मौज-मजा करो, खूब काम-भोग में लिप्त रहो। जो करना है सो करो। फिर भी देखो-ऐसा ध्यान सिखाएंगें। ऐसा ध्यान सिखाएंगे ! उसमें ऐसा आनंद आयेगा, ऐसा आनंद आयेगा आदि।

ऐसे लोगों के यहां बड़ी भीड़ लगती थी। आदमियों को छूट चाहिए ना ? सदाचार की छूट मिल जाए और फिर आनंद आये तो और क्या चाहिए ?

विपश्यना में यह नहीं चलता। आधार शील-सदाचार का होना अत्यंत अनिवार्य है। क्यों अनिवार्य है ? इसे भी समझें। आखिर मन का ऑपरेशन करना है। केवल ऊपरी-ऊपरी मन में किसी प्रकार का आनंद भर देना, विपश्यना का लक्ष्य नहीं है। बहुत गहराइयों तक, मानस की तलस्पर्शी गहराइयों तक जहाँ विकारों का उद्गम होता है, जहाँ विकारों का संचय होता है, वहाँ तक पहुँचना है। गहरा ऑपरेशन है। अगर हमारा मानस, ऊपर-ऊपर का मानस बहुत व्यथित होगा, बहुत विचलित होगा, बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगें होंगी उसमें, तो गहराइयों में जाना मुश्किल हो जाएगा।

जैसे हमें समुद्र-तंल के नीचे कोई तेल के कुंए का भंडार खोजना है कि तेल का संग्रह कहाँ है ? बहुत आवश्यक खोज है पर मानूसन आ गया। अब यह सारी खोज बन्द। क्यों बन्द हो गयी ? क्योंकि समुद्र के ऊपर इतनी ऊँची-ऊँची उत्ताल तरंगे चल रही है कि अब उन गहराइयों में जा करके खोज का काम नहीं हो सकता। मानसून खत्म हुई, वर्षा काल खत्म हुआ, फिर खोज शुरू हो जाती है। वर्षा काल समाप्त हो गया तो वे ऊँची-ऊँची उत्ताल-तरंगें आनी बन्द हो गयी। लेकिन.तरंगें तो अभी भी हैं। ऐसे ही मानस में विकारों की तरंगें तो रहेंगी ही। लेकिन जिस समय हम किसी भी शील-सदाचार को तोड़ेंगे- हत्या करें, कि चोरी करें, कि व्यभिचार करें, कि झूठ बोलें, कि नशा-पता करें तो इतनी ऊँची-ऊँची तरंगे हमारे ऊपरी-ऊपरी मानस पर आने लगेंगी कि गहराइयों में जा ही नहीं सकेंगे। गहराइयों तक जाने को काम करना है तो एक बार अपने मानस की ऐसी स्थिति बनानी ही होगी कि जहां विकार तो हैं पर उतनी उत्ताल तरंगों वाले विकार नहीं है। और अब काम शुरू कर देंगे।

तपोभूमि का सारा वातावरण ही ऐसा है। वहां के नियम-उपनियम, वहां का शासन-अनुशासन, वहां की समय-सारिणी, सबका बड़ी कड़ाई से पालन करना होता है। खूब अनुशासन के साथ काम करेंगे तो काम ठीक होगा। कोई मौज-मजे के लिएँ नहीं जा रहें हैं, कोई पिकनिक के लिए नहीं जा रहे हैं। बहुत गंभीर तपस्या करके अपने मानस के विकारों को बाहर निकालना है। तो बड़ी गंभीरता के साथ काम करना पड़ेगा। निरंतरता के साथ काम करना पड़ेगा। इसलिए उन सारे नियमों को समझ करके मानते हुए, उनका पालन करते हुए काम करेंगे।

क्या काम करेंगे ? काम शुरू करते ही पहले अपने मन को एकाग्र करने की विद्या सीखेगें। मन को एकाग्र करने के लिए किसी न किसी आलंबन का, किसी न किसी आधार को सहारा लेना होता है। अनेक आलंबन हैं, जिनके सहारे हम अपने मन को एकाग्रकरने का अभ्यास कर सकते हैं।

विपश्यना की खोज करने वाले इस महान सम्यक् संम्बुद्ध ने हमें एक ऐसा आलंबन दिया जो सदा हमारे साथ रहता है। जब से जन्में हैं और जब तक मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जायेंगे, तब तक यह आलंबन हमारे साथ है। हमारा यह अपना सांस जबसे जन्में है और जब तक मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाएंगे, तब तक आता ही रहता है, जाता ही रहता है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, हर अवस्था में सांस आ रहा है, सांस जा रहा है। सांस आ रहा, सांस जा रहा है। बस इसी को आलंबन बना लिया। सहज स्वाभाविक सास, जैसे भी आ रहा है, जैसे भी जा रहा है ; उसे केवल जानना है और कुछ नहीं करना। कहीं सांस की कसरत न करने लगें, सांस पर किसी तरह का नियंत्रण न करने लगें। सहज स्वाभाविक सास। गहरा है तो जान लिया गहरा है, छिछला है तो जान लिया छिछला है। बांयी नासिका से गुजरता है तो बायी नासिका से गुजरता है। दाहिनी से गुजरता है तो दाहिनी से गुजरता है और दोनों से गुजरता है तो दोनों से गुजरता है।

हमारा काम तो केवल जानना है। सांस की कसरत नहीं, उस पर कोई नियंत्रण नहीं। प्राणायाम बिल्कुल नहीं। प्राणायाम के अपने लाभ होते हैं। लेकिन वह बिल्कुल भिन्न मार्ग है। उसका विपश्यना से कोई लेन-देन नहीं। यहां तो क्षण-प्रतिक्षण जो सच्चाई अपने बारे में प्रकट हो रही है, बस, उसे द्रष्टा भाव से, साक्षी भाव से, तटस्थ भाव से जानना है। यह विद्या मात्र जानने की है, सांस की कसरत की नहीं। सांस तो स्वाभावतः आता है। जैसा भी आये अपने मन को नासिका के द्वारों पर, नासिका के भीतर, नासिका की नलियों तक इतनी सी दूरी में सीमित रखते हुए, सांस के आवागमन को जान रहे हैं। आ रहा है, जा रहा है। आ रहा है, जा रहा है। उस पर किसी तरह का नियत्रंण नहीं उसमें कोई फेर-फार करने की जरूरत नहीं। बांयी नासिका से आ रहा है तो उसे दाहिनी ओर ले जाने की जरूरत नहीं। गहरा है तो छिछला करने की जरूरत नहीं। छिछला है तो गहरा करने की जरूरत नहीं।

सांस जैसा भी है, यथाभूत त्राणदस्सनं - उसका दर्शन ज्ञानपूर्वक कर रहें हैं। सांस आ रहा है, सांस जा रहा है। बांयी नासिका में से गुजर रहा है, कि दाहिनी नासिका में से गुजर रहा है, कि दोनों नासिकाओं में से गुजर रहा है। बस, उसके आवागमन के प्रति हम बहुत सजग हैं। तटस्थभाव से जान रहे हैं।

क्या तटस्थभाव होता है ? नदी के तट पर बैठे हैं, नदी बह रही हैं। उस नदी के बहाव में हमारा कोई हाथ नहीं। न हम उसे तेज करते हैं, न हम उसे आहिस्ता करते हैं। नदी का पानी मैला है। तो मैला है, स्वच्छ है तो स्वच्छ है। नदी पर ऊँची-ऊँची तरंगें है तो ऊँची-ऊँची तरंगें हैं। बिना तरंग वाला है तो बिना तरंग वाला पानी है। तट पर बैठा हुआ आदमी केवल देखता है। यह नदी का प्रवाह है, चल रहा है। कर्ता भाव बिल्कुल नहीं। केवल द्रष्टाभाव, साक्षीभाव रखता है। वैसे ही सांस के आवागमन में भी कर्ता भाव बिल्कुल नहीं। मात्र साक्षी भाव, द्रष्टाभाव, तटस्थभाव से बस एक स्थान पर मन को लगाकर के केवल जान रहे हैं। और कुछ नहीं करना है।

सांस आ रहा है, जान रहें हैं। जा रहा है, जान रहें है। बड़ा सरल काम है ना ? कुछ करना ही नही। कोई कसरत नहीं। केवल जानना है। इससे सरल काम और क्या होगा ? लेकिन जब कभी दस दिन समय निकालकर आओगे तो देखोगे, बड़ा कठिन काम है। बड़ा कठिन काम है। अरे, दो सांस भी नहीं देख पाओगे कि मन वह भागा। दो सांस भी नहीं देख पाओगे कि मन वह भागा। बार-बार मन भागेगा, बार-बार उसे सांस पर लाओगे। एक चिड़चिडाहट उठने लगती है कभी-कभी साधक को कि अरे, कैसा मन लिये चल रहा हूँ ? इतना सरल -सा काम कि जहां करना-कराना कुछ नहीं। नदी के तट पर बैठ करके, नदी के प्रवाह हो देखना है ऐसे ही सांस के प्रवाह को देखने के लिए मन को यही लगा दिया। बस, सांस के प्रवाह को देख रहे हैं। इसमें कोई मेहनत नहीं, कोई कसरत नहीं। इतना सा काम भी नहीं कर सकते ? तो झुंझलाहट आयेगी अपने मन पर।

तो मार्ग दर्शक कहेगा, अरे ! नहीं, नहीं, अपने आप पर भी क्रोध नहीं करना। अपने मन पर भी क्रोध नहीं। अरे, क्रोध तो क्रोध है भाई ! झुंझलाहट तो झुंझलाहट है। बहुत व्याकुल बना देगी उसके स्वाभाव से मुक्त होने के लिए तो आये हो। स्वीकार करें इस समय मेरा मन भटक गया। बस, स्वीकार करो और फिर काम में लग जाओ। फिर सांस पर मन गया। फिर भटक गया। होश आते ही फिर लग गये। अरे, फिर भटक गया ! फिर आ जाओ। बस, यों करते-करते एक दिन, दो दिन, तीन दिन में परिणाम आने शुरू हो जाएंगे।

काम करना पड़ेगा। शुद्ध धर्म के रास्ते चलना है तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, बड़ा पुरूषार्थ करना पड़ता है। किसी की कृपा से नहीं होता। कृपा यही कि चलने वाला उस रास्ते पर चला है तो बता देगा कि ऐसे कर भाई, इस तरह चल, इस मार्ग पर चलना तो खुद ही पड़ेगा। और चलेगा तो देखेगा अरे, मंगल ही मंगल है इस मार्ग में कल्याण ही कल्याण भरा हुआ है इस मार्ग में। शांन्ति और सुख भरा हुआ है इस मार्ग में। चलते-चलते विकारों से जैसे-जैसे मुक्त होते चले जायेंगे, वैसे-वैसे मंगल ही मंगल जागेगा, कल्याण ही कल्याण जागेगा। शुद्ध धर्म के रास्ते जो चले, उसी का खूब मंगल होता है, खूब कल्याण होता है। बड़ी स्वस्ति मुक्ति होती है, बड़ी स्वस्ति-मुक्ति होती है।

पहली मंजिल शील है, दूजी मंजिल ध्यान।

तीजी प्रज्ञा पुष्टि की, चौथी मुक्ति निधान ॥

शील धर्म पालन करे, दूर करे दुख शोक।

सदाचार से सुधरते, लोक और परलोक ॥

ჯ੦ଔ

२. स्वदर्शन ही प्रमुख है।

चित्त को नितांत विशुद्ध कर देने वाली विपश्यना विद्या का अभ्यास करने के लिए जब कभी किसी विपश्यना-तपोभूमि में आओगे तो वहां दस दिन रहते हुए , वहां के सारे नियमों का पालन करते हुए, सभी प्रकार के अनुशासन और पांच शीलों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते हुए, अपने सांस के प्रति जागरूक रहने का काम आरंभ करोगे। सारी साधना अपने प्रति, अपने बारे में जो सच्चाई प्रकट हो रही है।

उसके प्रति जागरूक रहने की है। सारी साधना आत्म-दर्शन की साधना है, स्वदर्शन की साधना है, सत्यदर्शन की साधना है। जिसको "मैं, मैं " कहे जा रहा हूँ या जिसको मेरा, मेरा' कहे जा रहा हूँ। आखिर क्या है ? किसको " मैं, मेरा' कह रहा हूँ ?

यह सारा शरीर-स्कंध, क्या यह 'मैं' है ? क्या यह मेरा है ? क्या मेरी आत्मा है ? इसे अनूभूतियों से जानना है। बुद्धि के स्तर पर तो बचपन से सुनते आये। इसलिए बुद्धि पर तो लेप लगे ही हैं और इसे स्वीकार भी करते हैं कि अरे , यह शरीर तो नश्वर है, भंगुर है। यह तो अनित्य है, यह 'मैं' कैसे ? यह 'मेरा' कैसे? यह मेरी 'आत्मा' कैसे ? नहीं, शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, ऐसा बचपन से सुनते और मानते आये हैं। पर सच्चाई क्या है ? हमें इस सच्चाई को अनुभूतियों के स्तर पर जानना है।

इसी प्रकार यह जो चित्त-स्कंध है, मानस का स्कधं है, इसे "मैं, मेरा" कहे जा रहे हैं। क्या सचमुच यह 'मैं' है ? क्या यह 'मेरा' है ? क्या यह 'मेरी आत्मा है ? तो बचपन से जैसे सुनते आये हैं उसके आधार पर कहते हैं, अरे, यह मन तो बड़ा अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है, जड़ है, यह 'मैं' कैसे होगा ? यह मेरा कैसे होगा ? यह मेरी आत्मा कैसे होगी ? यह तो मानने की बात हुई, जानने की बात नहीं हुई। और जब जानना है। इसी शरीर के बारे में अनुभूति के स्तर पर पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। इस चित्त के बारे में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। चित्तवृत्तियों के बारे में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करनी है। और इसकी जानकारी पूरी हो जाय तो देखेंगे, जैसे जैसे इसकी जानकारी के क्षेत्र में आगे बढ़ते जा रहे हैं तो स्थूल सच्चाइयों से काम शुरू करते हुए उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती चली जायेंगी। दृष्टाभाव के केवल जानते जायेंगे, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करेंगे तो देखेंगे, मन पर से मैल की परतें उतर रही हैं।

मन पर से मैल की परतें उतरती हैं तो उससे अधिक सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती हैं। और परतें उतरती हैं तो और सूक्ष्म सच्चाइयां प्रकट होती हैं। यों शरीर के स्थूल से स्थूल सत्य का दर्शन करते हुए जब आगे बढ़ोंगे तो बढ़ते- बढ़ते ऐसी अवस्था पर पहुँच जायेंगे कि शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म सच्चाई अनुभूति पर उतर जायेगी। तो मानो इस भौतिक जगत की सूक्ष्म से सूक्ष्म सच्चाई अनुभूति पर उतर जायेगी। इसी तरह से चित्त की स्थूल से स्थूल अवस्थाओं से काम शुरू करते-करते उससे

सूक्ष्म, उससे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम सच्चाइयों का निरीक्षण करते-करते देखेंगे, मन के विकार दूर होते-होते एक अवस्था आएगी जब शरीर और चित्त के परे की, परम सत्य की अवस्था अनुभूति पर उतर जायेगी, उसका साक्षात्कार हो जायेगा।

यह सारा का सारा शरीर-क्षेत्र, यह सारा का सारा चित्त-क्षेत्र अनुभूतियों से देखते जायेंगे, सचमुच नश्वर है, सचमुच भंगुर है। मानने की बात नहीं , अनुभूतियों से जान रहे हैं। सचमुच परिवर्तनशील है। प्रतिक्षण बदल रहा है। इस अनित्यता की सच्चाई के साथ-साथ मन पर के मैल उतरते-उतरते आगे जाकर एक अवस्था आयेगी, जब शरीर और चित्त के परे जो परम सत्य है, जो इंदियातीत सत्य है, जो भवातीत सत्य है, लोकातीत सत्य है, जो अजर है, अमर है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, उसका साक्षात्कार हो जाय। अरे, तो जीवन ही बदल जायेगा। जीवन तो हर कदम इस रास्ते पर चलते हुए बदल रहा है, पर उस वक्त तो जीवन में बहुत बड़ा मोड़ आ जायेगा।

एक बात इसलिए याद रखनी जरूरी है कि इस रास्ते चलने वाला व्यक्ति हमेशा सत्य के सहारे चलेगा। सत्य वह जो मेरी स्वयं की अनुभूति पर उतर रहा है। जो कहीं सुना है, कहीं पढ़ा है और उसकी कल्पना करने लगे, उसे श्रद्धा से मानने लगे या उसे चिंतन-मनन द्वारा स्वीकार करने लगे तो बात नहीं बनती। अनुभूति के सहारे-सहारे अपने बारे में जो सच्चाइयां हैं उनका अनुसंधान करना है। उनको अनुभूतियों के स्तर पर जानना है।

तो पालथी मार कर आराम से बैठे गये। आंखें बंद हैं, मुँह बंद है। वाणी से कोई काम नहीं कर रहे। शरीर से कोई काम नहीं कर रहे। आराम से बैठे हैं। अब अनुसंधान का काम शुरू हो। अपने बारे में याने जिसे "मैं, मेरा' कहता हूं, इसे शरीर के बारे में, इस चित्त के बारे में क्या सच्चई प्रकट हुई ? तो सबसे पहले जो सच्चाई प्रकट हुई वह इस श्वास के आने-जाने की सच्चाई प्रकट हुई। कल्पना नहीं है। कोई सुनी-सुनाई बात की मान्यता नहीं है। कोई पढ़ी-पढायी बात की मान्यता नहीं है। अनुभव कर रहे हैं। यह सांस भीतर आ रहा है। यह सांस बाहर जा रहा है। इस सच्चाई के आधार पर काम शुरू किया। शुद्ध सांस, इसके साथ कुछ जुड़ न जाय। मैं जानता हूँ, इसमें कठिनाई होती है। शुद्ध सांस के सहारे-सहारे मन को एकाग्र करना चाहें, तो कठिनाई होती ही है, पर इस मार्ग पर चलने के लिए यह बहुत आवश्यक है।

मैं स्वयं अपने अनुभव से भी जानता हूँ और अन्य अनेक लोगों के अनुभव सुने हैं उससे भी स्वीकार करता हूं कि इस सांस के आवागमन की जानकारी के साथ-साथ अगर कोई शब्द जोड़ दिया जाय। बार-बार, बार-बार उस शब्द को दोहराते रहें तो देखते हैं कि मन बड़ी जल्दी एकाग्र हो गया। या उसके साथ-साथ कोई आकृति जोड़ दें।

कोई रूप, किसी देवी की, देवता की, ईश्वर की, ब्रह्म की, संत की, महापुरूष की जिसके प्रति भी श्रद्धा है, उसकी कोई मूरत की बंद आंखों के सामने कल्पना करने लगे। जैसे कोई नाम जोड़ दें, कोई शब्द जोड़ा तो किसका जोड़ा ? किसी देवी का, किसी देवता का , किसी ईश्वर का , किसी ब्रह्म को, किसी संत का, किसी महापुरूष का, जिसके प्रति भी श्रद्धा है उसका नाम साथ-साथ लिये जा रहे हैं। सांस को भी जान रहे हैं, मन ही मन वह नाम भी लिये जा रहे हैं। सांस को भी जान रहे हैं, उसके साथ-साथ कोई आकृति, कोई रूप का भी ध्यान कर रहे हैं, तो देखेंगे कि मन बड़ी आसानी से एकाग्र होने लगा। मन को एकाग्र करने के काम में कम से कम कठिनाइयां आयीं।

यह अपने अनुभव से जानते हुए भी कहता हूँ कि नही, विपश्यना के मार्ग पर चलना है तो सांस के साथ कोई शब्द जुड़ने न पाये। कोई रूप, कोई आकृति, कोई कल्पना जुड़ने न पाये। नहीं तो भटक जायेंगे। जिस काम के लिए आये हैं उस लक्ष्य तक पहुँचना मुश्किल हो जायेगा। पहुँच ही नहीं पायेंगे। अगर हमारा लक्ष्य यह होता कि येन-केन प्रकारेण किसी प्रकार भी इस चित्त को एकाग्र करना है। बहुत भटकता है, बहुत भागता है। बड़ा चंचल है, बड़ा चपल है। इसको किसी एक आलंबन पर रोकना है। इसे निर्विचार कर देना, निर्विकल्प कर देना ही हमारा अंतिम लक्ष्य हो तो सचमुच हमें कोई न कोई शब्द जोड़ ही देना चाहिए। अथवा हमें कोई न कोई आकृति, इस सांस के साथ जोड़ ही देनी चाहिए। काम हल्का हो जायेगा, काम जल्दी हो जायगा।

लेकिन नहीं, चित्त की एकाग्रता हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य नहीं है। चित्त को निर्विचार कर देना, निर्विकल्प कर देना अंतिम लक्ष्य नहीं है। हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य है चित्त को निर्विकार कर देना। अगर विकार नहीं निकले और चित्त एकाग्र हो गया, तो लाभ नहीं हुआ ना ! तो विकार निकालने के लिए हमें उन गहराइयों तक जाना पड़ेगा जहां विकारों की उत्पत्ति होती है। उनका संवर्धन होता है और संवर्धन होते-होते विकार हमारे सिर पर चढ़ जाते हैं। और हमें जो नहीं करना चाहिए वह कर गुजरते हैं। होश जगा कर हम उनका संवर्धन रोक सकते हैं, उनका उद्गम रोक सकते हैं। होश को ही गहरा, तीक्ष्ण करके जो विकारों की जड़े हैं, जो पुराना संचय है उसका उत्खनन कर सकते हैं। अंतर्मन की गहराई में दबे विकारों को जड़ से उखाड़ कर निकालना शुरू कर सकते हैं।

यह सारा काम हमें करना है। चित्त की एकाग्रता हमारे इस काम में मददगार होगी। हमारे लिए साधन होगी, साध्य नहीं। अपने बारे में सच्चाई जाननी हैं। हम अपने मार्ग से न भटक जायँ। क्योंकि जैसे ही कोई शब्द जोड़ा तो धीरे-धीरे देखेंगे कि सांस को तो बिल्कुल भूल जायेंगे, वह शब्द ही प्रमुख होता चला जायगा। बार-बार, बार-बार एक शब्द दोहराते-दोहराते मन एकदम उस शब्द में डूब जायगा। उसी में एकदम समाहित हो जायगा। समाधि तो लग गयी पर हमारे शरीर और चित्त में क्या हो रहा है, इसको देखने का काम रूक गया। किसी मूर्ति की कल्पना के सहारे-सहारे हमारा मन एकाग्र तो हो जायगा। उसी मूर्ति को देखते-देखते उस आलंबन में डूब जायगा, समाहित हो जायगा। समाधि तो लग गयी लेकिन अपने विकारों को जड़ से निकालने का काम बंद हो गया।

अपने बारे में, अपने शरीर और चित्त के बारे में हमें जानना है। यह शरीर को क्या प्रपंच है ? यह चित्त का क्या प्रपंच है ? इसको जानने के लिए, जो घटना अपने आप घट रही है, बस हमें उसी के सहारे-सहारे चलना है । अपने भारत के संतों की वाणी में कभी-कभी विपश्यना की गूंज सुनायी दे जाती है। भारत का एक संत कहता है-

" थापिआ न जाइ, कीता न होइ, आपे आपि निरंजनु सोई ।"

'थापिआ न जाइ' - जो सच्चाई प्रकट हो रही उस पर कुछ आरोपण मतकर देना । अपनी कोई मान्यता का, किन्हीं शब्दों का, किसी आकृति का आरोपण कर मत देना । जो हो रहा है, बस, उसे ही जानना है । अपनी ओर से कुछ करना नहीं है । कोई स्वनिर्मित, कृत्रिम सत्य नहीं । इसीलिए संत ने कहा-**'थापिआ न जाइ'**, और **'कीता ने होइ** ।

'आपे आपि'-जो सच्चाई अपने आप प्रकट हो रही है, बस, उसी को निरंजन मानो । **"अंजन मांहि निरंजन देखो'** - यह जो शरीर दीख रहा है, भौतिक शरीर, इसके भीतर हमें उस निरंजन के दर्शन करने होते हैं जिसका कोई रूप नहीं, जिसकी कोई आकृति नहीं । दर्शन करना है माने उसकी अनुभूति करनी है । तो कोई आरोपण नहीं हो । सांस आ रहा है तो बस जान रहे हैं, आ रहा है । सांस जा रहा है । सांस जा रहा है तो जान रहे हैं, जा रहा है । सांस बांयी नासिका से गुजर रहा है कि दाहिनी नासिका से गुजर रहा है, लंबा है कि ओछा है । जैसा भी है, यथाकृत नहीं, यथाभूत जान रहे हैं । अपनी ओर से कोई आरोपण नहीं करेंगे । यथा-कल्पित नहीं, यथा-वांछित नहीं । यथाभूत, आपे आपि, सांस जो अपने आप आ रहा है, बस, उसे जान रहे हैं । जैसा भी है । तो मन को केवल सांस का एक आलंबन मिला । उसको सहारा देने के लिए और कुछ है नहीं । कोई शब्द नहीं, कोई रूप नहीं, कोई आकृति नहीं । तो भागता है । बार-बार भागेगा, बार-बार ले आओगे । बार-बार भागेगा, बार-बार ले आओगे । कठिनाई होगी । लेकिन इस कठिनाई में से गुजरना 'बड़ी कल्याणकारिणी बात है ।

कोई शब्द इसलिए भी नहीं जुड़ने देते, कोई रूप या आकृति इसलिए भी नहीं जुड़ने देते क्योंकि यह सारा का सारा मार्ग सार्वजनीन है । किसी संप्रदाय से बँधा हुआ नहीं है । जैसे ही कोई शब्द जोड़ेंगे तो अधिकतर क्या शब्द जोड़ेंगे ? जिस किसी देवी । पर, देवता पर, ईश्वर पर , ब्रह्म पर, अल्लाह-ताला पर, किसी संत पर, किसी महापुरूष पर, किसी गुरू पर, जिस पर श्रद्धा होगी, उसी का नाम तो बार-बार लोगे। और हर समाज का, हर संप्रदाय का, हर संगठन का अपनी -- अपनी मान्यता का कोई आदर्श व्यक्ति है, कोई देव है, कोई देवी है, कोई ईश्वर है, कोई ब्रह्म है, कोई संत है, तो वह उसी समुदाय तक सीमित रह गया । हमने किसी एक संप्रदाय का नाम जोड़ दिया, मानो सांस के साथ-साथ कहने लगे - बुद्ध, बुद्ध, बुद्ध, तो जो बौद्ध नहीं हैं वे कहेंगे, हम क्यों बुद्ध कहें ? हमे तो कहेंगे - राम, राम, राम । तो जो मुस्लिम हैं वे कहेंगे,हम क्यों राम, राम,

राम कहें ? हम तो कहेंगे - अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह। तो यूनिवर्सल बात नहीं हुई, सार्वजनीन बात नहीं हुई।

केवल सांस को देख रहे हैं तो सार्वजनीन बात है। इसको सब देख सकते हैं। अपने आप को हिंदू कहने वाला भी, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी, यहूदी चाहे जिस संप्रदाय का व्यक्ति हो, चाहे जिस समाज का व्यक्ति हो, बड़ी आसानी से बिना किसी झिझक के सांस को देख सकता है। तो बस, यह एक बड़ी बात ध्यान में रखने की है कि हमारा सारा का सारा मार्ग सार्वजनीन धर्म का मार्ग है। किसी एक सम्प्रदाय का मार्ग नहीं है।

केवल सांस को देखते हैं तो सार्वजनीन बात है। कोई शब्द जोड़ देते हैं तो कठिनाई होती है। इसी तरह से कोई रूप जोड़ेंगे तो किसी न किसी देवी की. देवता की, ईश्वर की, ब्रह्मकी ; जिसके प्रति श्रद्धा है ऐसे संत की, किसी महापुरूष की, अपने गुरू की ; कोई न कोई आकृति जोड़ेंगे। लेकिन वह तो उस-उस संपद्राय तक, उस-उस समाज तक सीमित होगी। सार्वजनीन बात नहीं हुई। सारी की सारी विद्या को, सारे के सारे पथ को सार्वजनीन रखना है तो कोई शब्द, कोई आकृति नहीं जुड़े। यह एक कारण है।

दूसरा कारण जैसे ऊपर बताया कि हम कहीं सच्चाई को छोड़ करके केवल चित्त को समाहित करके न रह जायँ। तो कभी-कभी ऐसा तर्क प्रस्तुत करते हैं, साधना करने के लिए जो आते हैं कि अच्छा, हम किसी देवी का नाम, किसी देवता का नाम, किसी ईश्वर का नाम, किसी संत का नाम, किसी संप्रदाय से संबंधित कोई नाम नहीं लेंगे। कोई रूप हम नहीं जोड़ेंगे। हम केवल सांस आ रहा है तो 'आया' जा रहा है तो 'गया', यही कहेंगे। " आया, गया, आया, गया," इसमें तो कोई संप्रदाय नहीं ? तो कोई शब्द साथ जोड़ दें तो काम हमारा हल्का हो जाय। आप क्यों नहीं जोड़ने देते ?

तो समझाते हैं, भाई, देखो, केवल सांस देखने का अपना एक कारण है कि सांस के सहारे-सहारे हमें अपने शरीर के, अपने चित्त के बारे में बहुत-सी जानकारियां हो जाने वाली हैं। और जैसे ही कोई शब्द जोड़ा कि सांस की जानकारी तो छूट गयी और यह "आया, गया, आया, गया, धीरे-धीरे यह 'आया, गया, आया, गया' एक मंत्र हो जायगा और मन इसी "आया, गया," का में एकदम समाहित हो गया। सांस को कहीं भूल गये। बात नहीं बनी। इसलिए सांस को जानते रहना अत्यंत आवश्यक है। कोई और आलंबन इसके साथ जुड़ने न पाये। केवल सांस, शुद्ध सांस; आ रहा है तो आ रहा है, जा रहा है तो जा रहा है।
मन भटका तो जैसे होश.आया, ओ, मेरा मन भटक गया था तो फिर शुरू कर देते हैं। अरे, भटकना उसका स्वाभाव है। उसे फिर सांस पर ले आना ही तो अपना काम है। बार-बार

भटकेगा, बार-बार ले आयेंगे। बार-बार भटकेगा, बार-बार ले आएंगे। भले बहुत प्रयत्न करना पड़े, बहुत परिश्रम करना पड़े , बहुत पुरूषार्थ करना पड़े। आसानी से मन को समाहित कर दिया तो आगे का काम रूक गया। समाहित तो कर दिया, चित्त एकाग्र हो गया, अच्छा भी लगा, लेकिन हमको जो अपने बारे में सच्चाइयां जाननी हैं, अपने बारे में अनुसंधान करना है, इस सारे शरीर-स्कंध का अनुसंधान करना है, इस सारे चित्त स्कन्ध का अनुसंधान करना है, वह सांस के सहारे-सहारे चलने पर होगा। केवल सांस के सहारे-सहारे चलते-चलते अपने बारे में बहुत-सी जानकारियां अपने आप प्रकट होनी शुरू हो जायेंगी। शुरू-शुरू में यों लगेगा कि यह सांस तो शरीर की एक प्रक्रिया है।

हमारे फेफड़े जो काम कर रहे हैं उसकी वजह से सांस आता है, जाता है ; आता है, जाता है। शरीर से इसका संबंध है, मन से इसका क्या संबंध ? और हमें तो मन की जानकारी भी करनी है। केवल शरीर की जानकारी करके नहीं रह जायेंगे। मन पर जो विकार आते हैं उनकी जानकारी भी करनी है। तो सांस को देखने के काम में जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे तो देखेंगे कि हमारा यह सांस केवल शरीर से ही संबंधित नहीं है बल्कि हमारे मन के साथ भी जुड़ा हुआ है और मन के विकारों के साथ भी जुड़ा हुआ है। अगर हम दृष्टाभाव से देख रहे हैं , साक्षीभाव से देख रहे हैं। उसमें और कोई सम्मिश्रण नहीं कर रहे तो सारी सच्चाईयां प्रकट होने लगेंगी। देखेंगे कि कोई विकार जागा- सांस को देखते-देखते कोई विचार आया, उस विचार को लेकर के कोई विकार जागा, कोई पुरानी बात याद आयी- उसने ऐसा कह दिया था, ऐसा कर दिया था और जागा क्रोध। या किसी बात को लेकर के जागी वासना, किसी बात को लेकर के जागा भय। और ध्यान से देख रहे हैं तो देखेंगे कि सांस ने अपनी स्वाभाविकता खो दी। सांस स्वाभाविक नहीं रहा। जरा-जरा सा तेज हो जायगा। जरा-सा भारी हो जायगा। जैसे ही वह विकार दूर हुआ, देखेंगे, सांस फिर स्वाभाविक हो गया।

अरे, हमें तो मन के उन विकारों को जानना है ताकि उनको जड़ों से निकाल दें। सांस को भूल करके यदि किसी शब्द के साथ समाहित हो गया तो इस सारी प्रक्रिया को, मन के बारे में जो सच्चाइयां हैं उनको,शरीर के बारे में जो सच्चाइयां हैं। उनको कैसे जानेंगे ? इसलिए कोई शब्द नहीं जोड़ें। कोई रूप नहीं जोड़ें, कोई आकृति नहीं जोड़ें। शुद्ध सांस, जैसे आ रहा है, जैसे जा रहा है, बस, इसी को साक्षीभाव से जानते रहेंगे, तटस्थभाव से जानते रहेंगे। तब देखेंगे कि एक ओर मन एकाग्र हो रहा है , भले कठिनाई से हो रहा है पर हो रहा है दूसरी ओर मन एकाग्र हो रहा है। और विकारों से विमुक्त हो रहा है। चाहे जरा-जरा ही हो रहा है। लेकिन अगर विकारों से विमुक्त नहीं हो रहा, चित्त-शुद्धि का काम बंद कर दिया तो हम लक्ष्य तक कैसे पहुँचेंगे ?

तो एकाग्रता के साथ-साथ चित्त विकारों से विमुक्त हो रहा है कि नहीं हो रहा है, इसके लिए सजग रहेंगे। विकारों से मुक्त हो रहा है तो मंगल सध रहा है, कल्याण सध रहा है, मुक्ति सध रही है। अरे, इसीलिए तो काम करते हैं। कैसे विचार-विमुक्त ही नहीं, विकार-मुक्ति जो जायँ ? बड़ा मंगल होगा, बड़ा कल्याण होगा। खूब स्वस्ति-मुक्ति होगी, खूब स्वस्ति-मुक्ति होगी।

हिंसा चोरी मद्य रत, रहे निरत व्याभिचार।
ये ही काया मैल हैं, काया शील सुधार॥

जो चाहे दुर्गति न हो, जो चाहे सुख सार।
पर-पीड़न से दूर रहे, अपना शील सुधार॥

बोल झूठ कड़वे वचन, चुगली या बकवास।
वाणी को मैली करें, करें शील का नाश॥

सत्य बोल मानव सदा, सत्य धर्म का माप।
झूठ बोल किसको ठगे, ठगता अपना आप॥

मंगलमय कल्याणमय, साधन आना-पान।
तन-मन देखत-देखते, देखें पद निर्वान॥

ध्यान करे जब सांस का, ध्यान सत्य का होय।
कहीं न मिथ्या कल्पना, पथ अवरोधक होय॥

तन का मन का सांस से, बड़ गहन संबंध।
इसे देखते - देखते, टूटें सब भवबन्ध॥

मन चंचल मन चपल है, भाग रहा सब ओर।
सांस डोर से बांधकर, रोकराख इक ठोर॥

चित्त की चाल विचित्र है, झट नभ झट पाताल।
सांस - सांस को देखते, मंद पड़े चित्त चाल॥

आते जाते सांस को, देख सके तो देख।
देखत-देखत चित्त के, दुर्गुण दिखें अनेक॥

आते-जाते सांस पर, रहे निरन्तर ध्यान।
मन सुधरे मंगल सधे, होय परम कल्यान॥

"सत्यनारायण गोयनका"

विपश्यना की आवश्यकता

हमसे से प्रत्येक, चाहे वह व्यापारी हो, व्यावसायिक हो, राजनीतिज्ञ हो, अधिकारी हो या कूटनीतिज्ञ हो, शान्ति और सुख खोज रहा है। हमसे से कोई शान्त और सुखी होने का दावा नहीं कर सकता। या तो रक्तचाप, हृदय-रोग, दमा, अनिद्रा, आधीसीसी सिरदर्द, तपैदिक, कैन्सर या अन्य कोई शारीरिक रोग है या दिन प्रतिदिन के पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक और राजनैतिक जीवन में तनाव है। सुख हरेक से बच निकलता है। एक शान्तिपूर्ण जीवन की खोज में लोग जान बूझ कर या अनजाने विविध प्रणालियों का अनुसरण करते रहे हैं। कुछ शामक गोलियों, प्रशान्तकों (ट्रैन्क्विलाइज़र) और मादक द्रव्यों को लेकर उन औषधियों आदि की सहायता से अस्थायी मानसिक शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस सब ने मानवता की सहायता नहीं की है और बढ़ते हुए नगरीकरण और पाश्चात्य जीवन-पद्धति अपनाने के साथ मानव दिन-प्रतिदिन और अधिक दुःखी हो गया है। क्या हमें इस प्रकार की स्थिति के प्रति आत्म-समर्पण करना होगा ? निश्चित रूप से नहीं।

यहां आती है ध्यान के विज्ञान विपश्यना साधना के रूप में औषधि। आचार्य के मार्ग-दर्शन में विपश्यना के अभ्यास द्वारा लोगों ने भयावह बीमारियों से स्वयं अपना उपचार करके अपने आप लाभ लिया है और मन की शुद्धता प्राप्त करके शाश्वत आनन्द का अनुभव किया है। क्या हमारा मन दूषित है ? हमारा मन हमारे दुःखों के लिए कैसे उत्तरदायी है ? यह एक आत्मान्वेषी प्रश्न है। अतः विपश्यना वह अन्वेषण करने में हमारी सहायता करती है। विपश्यना का अभ्यास करते हुए हम देखते हैं कि मानव-मन राग-द्वेषों का एक पुलिंदा मात्र है। हममें से प्रत्येक या तो कुछ करना पसन्द करता है या नापसन्द, कुछ प्राप्त करना पसन्द करता है या ना पसन्द, किसी स्थिति में होना पसन्द करता है या ना पसन्द। ये राग-द्वेष हमेशा तनाव पैदा करते है। इस रूप में इन्हें मन के मैल बताया गया है। राग-द्वेष हमेशा जितने प्रगाढ़ होंगे उतना ही मानव दुखी होगा। इन मलों से छुटकारा कैसे मिले और मन की शुद्धता प्राप्त हो-एक ऐसी स्थिति जहां सब स्थितियों के प्रति मन की प्रतिक्रियायें समतामय हों। तब राग और द्वेष निष्प्रभावी हो जाते हैं। सुखद स्थिति आपको उत्तेजित नहीं करती और दुःखद स्थिति आपका व्याकुल नहीं करती। मन की यह आदर्श स्थिति केवल एक योग्य आचार्य के मार्ग-दर्शन में विपश्यना का अभ्यास करने से प्राप्त की जा सकती है। फिर, उसे कौन नहीं करना चाहेगा ? यदि हम जानते और समझते हैं। कि हमारे जीवन में प्रत्येक तनाव का कारण हमारे मन का अनियमित और विवेकहीन व्यवहार है, उस मन का जो प्रगाढ़ राग-द्वेषों से घिरा हुआ है। यदि हम इस दृश्यप्रपञ्च के प्रति सजग रहने और समतायुक्त मन से प्रत्येक स्थिति का सामना करने की अवस्था में हैं - एक ऐसे मन से जो प्रगाढ़ राग-द्वेषों के शिकंजे में नहीं है- तो हम अपने जीवन में व्यवस्था ला सकते हैं, अपने विचारों को

अनुशासन में रख सकते हैं और शान्ति यथा आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। निश्चय ही यह विपश्यना का अभ्यास करने से प्राप्त किया जा सकता है।

तब क्या इसे सीखना और इसका अभ्यास करना वाञ्छनीय नहीं है ?
कोई भी नहीं नहीं कहेगा।

मंगल हो।

साभार : विपश्यना ' अगस्त व सितम्बर ६८ आदि से

आओ मानव, मानवी ! चलें धर्म के पंथ।

इस पथ चलते सत्पुरूष, इस पथ चलते संत ।।

धर्मपंथ ही शांति पथ, धर्म पंथ सुख पंथ।

जिसने पाया धर्म पथ, मंगल मिले अनंत ।।

देखो अपने आपको, समझों अपने आप।

अपने को जाने बिना, मिटे न भव संताप ।।

देखो अपने चित्त में, राग-द्वेष अभिमान।

राग-द्वेष देखे बिना, अंत न दुख का जान ।।

देख स्वयं के दोष गुण, छोड़ दोष गुण राख।

हो निर्मल निर्दोष चित्त, विमल मुक्ति रस चाख ।।

अपने मन की सरलता, अपना ही सुख सार ।।

अपने मन की कुटिलता, अपने ही सिर भार ।।

मन के भीतर ही छिपी, स्वर्ग सुखों की खान।

मन के भीतर धधकती, ज्वाला नरक समान ।।

अपने अन्तर जगत को, देख सके तो देख।

देखत-देखत देखते, प्रकटें सत्य अनेक ।।

धर्म पुनः जागृत हुआ,खुले मुक्ति के द्वार।

सुनो कान वालो सुनों, सत्य धर्म का सार ।।

कुशल करम संचित करें, हो न पाप लवलेश।

मन निर्मल करते रहें, यही धर्म उपदेश ।।

विपश्यना-साधना-शिविर

अंतर्मन की गहराइयों तक जाकर ग्रंथि-विमोचन की कला सीखने के लिए 10 दिन की अवधि सचमुच बहुत कम है। अतः इसका पूरा लाभ उठाने के लिए एकांत अभ्यास की निरंतरता नितांत आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखकर अनुशासन-संहिता की नियमावली और समय-सारिणी बनाई गई है। इसके पीछे अनेक साधकों के अनुभवों का वैज्ञानिक आधार है। इसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं।

यदि इनका पालन निष्ठा और गंभीरतपूर्वक कर सकते हों तो ही शिविर में प्रवेश पाने के लिए आवेदन करना उचित होगा

- शिविरार्थी को पूरे 10 दिनों तक शिविर-स्थल पर ही रहना होगा। बीच में शिविर छोड़कर नहीं जा सकेंगे।
- शिविर की अवधि पर्यंत साधक किसी अन्य प्रकार की साधना-विधि व पूजा-पाठ, धूप-दीप, माला-जप, भजन-कीर्तन, व्रत-उपवास आदि कर्मकांडो का अभ्यास, अनुष्ठान बिल्कुल न करें। विपश्यना के साथ ऐसा संमिश्रण बहुधा हानिप्रद साबित हुआ है, इसी कारण यह नियम बनाया गया है।
- प्रत्येक साधक को शिविर के दौरान :- 1. जीव-हत्या 2. चोरी 3. मैथुन 4. असत्य भाषण और 5. नशे व मादक पदार्थ के सेवन से -विरत रहना होगा।
- साधक किसी भी विषय की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं व लेखन-सामग्री अपने साथ नहीं लायें। शिविर के दौरान धार्मिक एवं विपश्यना संबंधी पुस्तकें पढ़ना भी वर्जित है।
- शिविर आरंभ होने से लेकर दसवें दिन सुबह साढ़े नौ बजे तक साधक आर्य-मौन याने वचन व शरीर से भी मौन का पालन करेंगे।
- अनुशासन-संहिता के नियम कठोर अवश्य हैं पर अत्यंत मंगल भावना से साधकों के लाभ हेतु बनाये गये हैं।
- विपश्यना जैसी पावन अनमोल साधना की शिक्षा पूर्णतया निःशुल्क ही दी जाती है। शिविरों का खर्च इस साधना से लाभान्वित साधकों के कृतज्ञता भरे ऐच्छिक दान से चलता है।
- दैनिक नैसर्गिक आवश्यकतओं के अतिरिक्त साधना के लिए निरंतर अभ्यास हेतु अधिक से अधिक समय मिल सकें, इसलिए सुबह 4:30 बजे से रात 9 बजे तक की समय सारिणी निर्धारित की गयी है।

नोटः- शिविर में सम्मिलित होने के लिए विपश्यना केंद्र से कृपया संपूर्ण अनुशासन-संहिता, आवेदन-पत्र और भावी शिविरो की जानकारी प्राप्त कर, समय रहते अपनी बुकिंग अवश्य करा लें।

मूल्यः धम्मपालन

भारत वर्ष में प्रमुख ध्यान केन्द्रों की सूची

धम्मागिरि : इगतपुरी (महाराष्ट्र) विपश्यना विश्व विधापीठ, इगतपुरी-422403, नाशिक, फोन : (02563) 244076, 244086 फैक्स: 244176 E-mail: info@giri.dharana.org

नाशिक नाशिक विपश्यना केन्द्र, म.न.पा. जलशुद्धिकरण केन्द्र के सामने, शिवाजी नगर, सातपुर, (पोस्ट-YCMOU), नाशिक - 422222 फोन (0253) 5616242, E-mail : info@giri.dharana.org

धम्मपत्तन : गोराईगांव, मुंबई गोराईगांव (एरालय, मुंबई) व्यवस्थापक, फोन : (022) 2845 - 2111/2281, टेलिफैक्स : 28452112 E-mail : globalpagoda@hotmail.com; Website : www.globalpagoda.org

धम्म सरिता : खडावली (धमरारित विपश्यना केन्द्र, जीयन संध्या गांगल्य संस्थान गातो श्री वृद्धाश्रम, सौरव, पोस्ट पडघा, ता. भिवंडी, जि.ठाणे-421101 (खडवली मध्य रेलवे स्टेशन के पास), फोन : (02522) 695301 मो. 9820943114

पुणे (महाराष्ट्र) पुणे विपश्यना केन्द्र, मरकल गांव के पारा, आलंदी से 8 किमी फोनः (02135) 246171, 246172

धम्मसरोवर : धुले (महाराष्ट्र) खान्देश विपश्यना केन्द्र, गेट नं0 166, डेडरगांव जलशुद्धिकरण केन्द्र के पास, मु.पो. तिखी, जिला-धुले, पिनः 4244002, फोनः (02562)255222

धम्मालय : कोल दुखि विपश्यना अनुसंधान केन्द्र, रामलिंग रोड, अलते पार्क, आलते, ता. हातकनंगले (रेलवे स्टेशन), जि. कोल्हापुर-416123, फोन : (0230) 2487167, फैक्स : 2487167 E-mail : info@alaya.dharmma.org

धम्म अजन्ता : औरंगाबाद (महाराष्ट्र) अजन्ता अन्तर्राष्ट्रीय विपश्यना समिति, एम. जी. एम. मेडिकल कालेज कैम्पस, एन-6, सिडको, रंगाबाद-431003

धम्मनाग : नागपुर (महाराष्ट्र) नागपुर विपश्यना केन्द्र, माहुरारी गांव, नागपुर-कलमेश्वर रोड़ के पास, फोनः (0712) 2458686 E-mail: info@naga.dhamma.org

धम्मसुगति : सुगतनगर (नागपुर) एकायनो मग्गोधूम्मू प्रशिक्षण संस्था, सुगतनगर, नागपुर-14 फोनः (0712) 2630115 (1) विपश्यना समिति, लुंबिनी, मु, मोगरा, पो. भानखेड़ों, ता.जिल, अमरावती, फोनः 2385501 (2) श्री अभ्यंकर, फोनः 2662179, 2662183

धम्मथली : जयपुर (राजस्थान) राजस्थान विपश्यना केन्द्र, पो. बा. 208, जयपुर -- 302001, (सिसोदियारानी बाग गुल्ताजी रोड होकर) फोनः (0141) 2680220, फैक्सः 2576283 E-mail: dhammathali.jpr@gmail.com

***दिल्ली**

विपश्यना साधूना संस्थान, लाजिकस्टेट फार्म, राधास्वामी सत्रांग फेज 4 के सामने, गांव-भाटी, छतरपुर मंदिर रोड, नई दिल्ली -110030, फोनः (011) 26653178

***धम्मपट्ठान : सोनीपत (हरियाणा) विपश्यना केन्द्र,** कम्मापुर, जि. सोनीपत, हरियाणा, पिन-131001, फोनः (0130) 2482976

***धम्मकारुणिक : करनाल (हरियाणा) विपश्यना केन्द्र,** सैनिक स्कूल के पास, कुंजपुरा, करनाल-132001, फोन : (0184) 2384404

***धम्मसोत : सोहना (हरियाणा) विपश्यना केन्द्र,** राका गांव, बल्लभगढ़-सोहना रोड, (सोहना से 12 किमी.), जिला-गुड़गांव, सोहना, हरियाणा फोनः 0124) 2013731 *इन चार केन्द्रों की बुकिंग के लिए सम्पर्क करें : विपश्यना साधना संस्थान, हेमकुठ टावर्स. 16वां तल, 98 नेहरू प्लेस, नई दिल्ली 19, फोन : (011) 26452772, 2648-5071, 2648-5072 मोबाइल नं. 9811045002 E-mail: vipassana/dhammasota.org

धम्मधजः होशियारपुर (पंजाब) पंजाब विपश्यना केन्द्र, आनंदगढ़, पो. मेहलांवली ... 146110, जिला होशियारपुर, फोन : (01882) 272333 E-mail : info@dhaja.dhamma.org

धम्मसिखर : धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) हिमांचल विपश्यना केन्द्र, मैकलौडगंज,धर्मशाला, जिला कांगरा, पिन-176219 (हि.प्र.) E-mail : info@sikhara.dharmma.org फोनः (01892) 221309, 220368

धम्मसलिल : देहरादून (उत्तरांचल प्रदेश) देहरादून विपश्यना केन्द्र, जनतनवाला गांव, देहरादून कैन्ट तथा सतला देवी मंदिर के पास, देहरान-248001, फोनः (0135)2104555, 2715189E-mail:info@@salila.dhamma.org

धम्मलक्खण : लखनऊ (उ.प्र.) विपश्यना साधना केन्द्र, अस्सी रोड, बक्शी का तालाब, लखनऊ, फोनः (0522) 2968525 E-mail: info@lakkhana.dhamma.org.

धम्मसुत्थी : श्रावस्ती (उ.प्र.) जेतवन विपश्यना साधना केन्द्रः कटरा बाई पास, श्रावस्ती, पिन-271845, फोनः (05252) 285439, E-mail: info@suratthi.dhamma.org.

धम्मचक्क : सारनाथ (उ.प्र.) धम्मचक्के विपश्यना साधना केन्द्र : खरगीपुर गांव, पो. पिथंरी, चौबेपुर, सारनाथ, वाराणसी-93369,14834, 94152-02135 E-mail : kambalghar@kambalghar.com मोबाइल : 099355-58100.

धम्मसिन्धु : मांडवी-कच्छ (गुजरात) कृच्छ विपश्यना केन्द्र : ग्राम-बाड़ा.ता. मांडवी, जिला-कच्छ-370475 फोन : (02834)273303 E-mail : info@sindhu.dharnma.org

धम्मकोट : रॉजकोट (गुजरात) सौराष्ट्र विपश्यना केन्द्र : कोठरिया रोड़, राजकोट, फोन : (0281) 2782040, आचार्य नि. आचार्य नि. {0287) 2782550 (राजकॉट से 15 कि.मी. फोन (0281) 2220861-6, 2681221, फैक्स : 550-2221384,

धम्म दिवाकर महसाना (गुजरात) उत्तर गुजरात विपश्यना केन्द्र, मिथा गांव, ता. और जिला मेहसाना, गुजरात, फोनः (02762) 272800 E-mail : info@divakara.dhamma.org. मेहसाना, गुजरात

धम्मपीठ : अहमदाबाद (गुजरात) गुर्जर विपश्यना केन्द्र : ग्राम रनोडा, ता. धोलका, जिला-अहमदाबाद-387810 E-mail : info@pithadhamma.org. फोनः 02714)294680 मोबाइल : 94264-19397

धम्मखेत्त : हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र : कुसुम नगर (12.6 कि.मी.) नागार्जुन सागर रोड, हैदराबाद500070 फोनः (040) 24240290, 24241746, फैन्स :24240290 E-mail : info@khetta.dhamma.org

धम्मपफुल्ल : बैंगलोर (कर्नाटक) अलूर दासपुरा हुबली, बैंगलोर उत्तर तालुका-562123 संपर्कः 1) निर्पेश्यना साधना एवं शोध केन्द्र कार्यालय). 185, 1 ला, गाला, 4 था क्रास लालबाग रोड, बैंगलोर-560027 फोनः (080) 22224330 फैक्स : 22275776 2) श्री गोयन्का, फोनः 26633980 - E-mail : info@paphulla dhamma.org

धम्मसेतु : चेन्नई (तसिननाडु) विपश्यना साधना केन्द्र : 533, पझान थंड रोड, थरुनीरलाई रो" ... थीमुदीवक्कम, चेन्नई-600044 E-mail: info@setu.dharmila.org फनिः (044) 24780953

धम्मकाननः बालाघाट (म.प्र.) धम्मकानन विपश्यना केन्द्र : वैन गंगा तट, रेंगाटोला, पो. गरों, बालाघंट, फोनः (07632) 222465 E-mail : info@kanana.dhamma.org

धम्मबल : जबलपुर विपश्यना ट्रस्ट जबलपुर : द्वारा मे, मधु मेडिकल स्टोर्स, मेडिसिन काम्प्लेक्स, शास्त्री ब्रिज के पास, मॅडेल रोड, जबलपुर-02 फोन : (0761) 4006252, 2610252 + (2) श्री महेश, मोबाइल - 9981598352

धम्मकेतु, भिलाई-दुर्ग (छत्तीसगढ़) विपश्यना केन्द्र, थनोद, वाया-अंजोरा, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़-491001, फोनः (0788) 3205512

धम्मलिच्छवी, मुजफ्फरपुर (बिहार) वैशाली विपश्यना केन्द्र, लदौरा ग्राम, लौरा पाक्री, मुजफ्फरपुर-843113 फोन : (0621) 2240215,. 2247760 E-mail: info@licchavi.dharmma.org

धम्मबोधि : बोधगया (बिहार) बोधगया अन्तर्राष्ट्रिय विपश्यना साधना केन्द्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया-डोभी रोड, बोधगया -824234, फोन : (0637) 2200437 मोबाइल : 9415007733, 9415028084 E-mail: info@bodhi.chamma.org.

धम्मगंगा : कोलकाता (प. बंगाल). विपश्यना केन्द्र, सोदपुर, हरिश्चन्द्र दत्ता रोड, पनिहटी, कोलकाता-700114, फोनः (033) 25532855 E-mail: info@ganga.dhamma.org

धम्मपुरी, उत्तर त्रिपुरा (त्रिपुरा) त्रिपुरा विपश्यना ध्यान केन्द्र 799 265, मो. मचमरा, जिला, उत्तर त्रिपुरा, त्रिपुरा-799265 फोनः (03822) 266204, 266238E-mail-dhamma_vmc@yahoo.co.in

धर्मशृंग : काठमांडु (नेपाल) नेपाल विपश्यना केन्द्र, मुहान पोखरी, बूढानीलकंठे, पो. बा. 12896, काठमांडू, फोन : 977-014371655,4371007, 4250581,4225490, निवासः 4224720, 4226314 E-mail : info@sringa.dhamma.org

धम्मजननी : लुंबिनी (नेपाल) लुंबिनी विपश्यना केन्द्र, लुंबिनी (पीस फ्लेम के पास रूपानदेह, लुंबिनी जोन, नेपाल, फोन : 977,071)-580282,541549 E-mail: info@janani.dharmma.org

धम्मविराट : नेपाल : पूर्वाचंल विपश्यना केन्द्र, फुलबरी टोल, बस पार्क के दक्षिण की ओर इथारी-7 संसरी, नेपाल, फोनः (9TT) (25) 585521 E-mail: info@birata.dhamma.org

(For world wide schedule etc.)

website- www.Vridhamma.org , www.dhamma.org